***ॐ***

~~~~~~~~~~

**विद्या भवन,बालिका विद्यापीठ,लखीसराय ।**

**कक्षा-अष्टम विषय- हिन्दी**

**दिनांक–14/07//2020 'सोना'**

**महादेवी वर्मा**

卐~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~卐

**सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया**

**मेरे प्यारे बच्चों, शुभ प्रभात!**

**आपका दिन मंगलमय हो!**

**आज पुन: कहानी को आगे की ओर ले चलते हैं।**
~~~~~~~~~~

## एन सी इ आर टी पर आधारित

# सोना

## ___महादेवी वर्मा

दूध पीकर और भीगे चने खाकर सोना कुछ देर कंपाउंड में चारों पैरों को संतुलित कर चौकड़ी भरती। फिर वह छात्रावास पहुँचती और प्रत्येक कमरे का भीतर-बाहर निरीक्षण करती। सवेरे छात्रावास में विचित्र-सी क्रियाशीलता रहती है, कोई छात्रा हाथ-मुँह धोती है, कोई बालों में कंघी करती है, कोई साड़ी बदलती है, कोई अपनी मेज की सफाई करती है, कोई स्नान करके भीगे कपड़े सूखने के लिए फैलाती है और कोई पूजा  करती है। सोना के पहुँच जाने पर इस विविध **कर्म संकुलता** में एक नया काम और जुड़ जाता था। कोई छात्रा उसके माथे पर कुमकुम का बड़ा-सा टीका लगा देती, कोई पूजा के बताशे खिला देती।

मेस में उसके पहुँचते ही छात्राएँ ही नहीं, नौकर-चाकर तक दौड़ आते और सभी उसे कुछ-न-कुछ खिलाने को उतावले रहते परंतु उसे बिस्कुट को छोड़कर अन्य खाद्य-पदार्थ कम पसंद थे।

छात्रावास का जागरण और जलपान अध्याय समाप्त होने पर वह घास के मैदान में कभी दूब चरती और कभी उस पर लोटती रहती। मेरे भोजन का समय वह किस प्रकार जान लेती थी, यह समझने का उपाय नहीं है परंतु वह ठीक समय पर भीतर आ जाती और तब तक मुझसे सटकर खड़ी रहती जब तक मेरा खाना समाप्त न हो जाता है। कुछ चावल, रोटी आदि उसका भी प्राप्य था परंतु उसे कच्ची सब्जी ही अधिक भाती थी। घंटी बजते ही वह फिर प्रार्थना के मैदान में पहुँच जाती और उसके समाप्त होने पर छात्रावास के समान ही कक्षाओं के भीतर-बाहर चक्कर लगाना आरंभ करती।

उसे छोटे बच्चे अधिक प्रिय थे क्योंकि उनके साथ खेलने का अधिक अवकाश रहता था। वे पंक्तिबद्ध खड़े होकर  सोना-सोना पुकारते और वह उनके ऊपर से छलांग लगाकर एक ओर से दूसरी ओर कूदती रहती। वहाँ सरकस जैसा खेल घंटों चलता क्योंकि खेल के घंटों में बच्चों की एक कक्षा के उपरांत दूसरी कक्षा आती रहती।

मेरे प्रति स्नेह-प्रदर्शन के कई प्रकार थे। बाहर खड़े होने पर वह सामने या पीछे से छलाँग लगाती और मेरे सिर के ऊपर से दूसरी ओर निकल जाती।प्रायः देखने वालों को भय होता था कि मेरे सिर पर चोट न लग जाए परंतु वह पैरों को इस प्रकार सिकोड़े  रहती और मेरे सर को इतनी ऊँचाई से लाँघती थी कि चोट लगने की कोई संभावना ही नहीं रहती थी।

भीतर आने पर वह मेरे पैरों से अपना शरीर रगड़ने लगती। मेरे बैठे रहने पर वह साड़ी का छोर मुँह में भर लेती और कभी पीछे चुपचाप खड़े होकर चोटी ही चबा डालती। डाँटने पर वह अपनी बड़ी गोल और चकित आँखों

से ऐसी **अनिर्वचनीय** जिज्ञासा भरकर एकटक देखने लगती कि हँसी आ जाती।

क्रमशः

शब्दार्थ-

कर्म संकुलता =कामों की भीड़

अनिर्वचनीय =अकथनीय,जो कहा न जाए।

**धन्यवाद**

**कुमारी पिंकी "कुसुम"**